जैन कर्म-सिद्धान्त और वंश-परम्परा विज्ञान

–डॉ. सोहनराज तातेड़

लोक या ब्रह्माण्ड (Universe) मुख्यतया दो तत्त्वों–चेतन और जड़ से बना है। इन दोनों का अस्तित्व शाश्वत है। दोनों के पर्याय बदलते रहते है, इसी कारण सृष्टि में हर क्षण रूपांतरण होता रहता है। जैन कर्म–सिद्वान्त के अनुसार चेतना व जड़ का तादात्म्य अनादि अनन्त काल से है तथा वह तब तक बना रहेगा जब तक आत्मा पौद्‌गलिक कर्म–बंधनों का पूर्ण क्षय कर मुक्त अवस्था को प्राप्त नहीं कर लेती।

जैन कर्म–सिद्वान्त के अनुसार ''उपयोग लक्षणो जीवः''। जीव (आत्मा–चेतना) का लक्षण उपयोग है। ज्ञान–दर्शन को उपयोग कहते है। ज्ञान–दर्शन को आबद्ध करने वाला मुख्य मोहनीय कर्म है। मोह के कारण राग–द्वेष। राग–द्वेष के कारण कर्म। कर्म के कारण जन्म–मरण। जन्म–मरण के कारण दुःख की उत्पति। इस प्रकार यह आवृत्ति पुनरावृत्ति होती रहती है। तत्वार्थसूत्र में कहा गया ''बध्यते परतन्त्रीक्रियते आत्माऽनेनेति बन्धनम्''। जिसके द्वारा आत्मा परतन्त्र कर दिया जाता है वह बंधन (कर्म) है। जैन कर्म–सिद्वान्त के अनुसार कर्मबद्व आत्मा ही नये कर्मों का संचय करती है, मुक्त आत्मा कर्म संचय नहीं कर सकती क्योंकि उनके कर्म बीज या राग–द्वेष पूर्ण नष्ट हो चुके होते हैं। जैन कर्म–सिद्वान्त के अनुसार आत्मा कर्म का उपादान है। आत्मा कर्म की कर्ता तथा भोक्ता है। उपादान तभी व्यक्त होता है जब उसे निमित्त मिले। कर्मो को भोगने के लिए निमित बनते हैं–योग (मन–वचन–काया),वातावरण तथा परिस्थिति। बिना निमित्त के कर्म आत्म प्रदेशों में ही भोग लिए जाते है। कषाय (राग–द्वेष) योगों की चंचलता बढाते हैं। योग चंचल होने पर कषाय को उत्तेजित करते हैं तथा कर्म योग्य पुद्‌गलों का बंध होता हैं। इस प्रकार पूरा एक चक्र है।[1]

शरीर माध्यम बनता है चेतना की अभिव्यक्ति का एवं कृत कर्मों के भोगने का। स्थूल शरीर का घटक है ''जीन''। सूक्ष्म शरीर का घटक है कर्म। जैसा ''जीन'' होता है, गुण सूत्र होता है, व्यक्ति वैसा ही बन जाता है। यह जीन सभी संस्कार सूत्रों तथा सारे विभेदों का मूल कारण है। वंश–परम्परा विज्ञान (Genetic Science) की भाषा में कहा जाता है कि एक–एक जीन पर साठ–साठ लाख आदेश लिखे हुए होते है तो कर्मशास्त्र की भाषा में कहा जा सकता है कि कर्म स्कन्ध में अनन्त आदेश लिखे हुए होते हैं। अभी तक वंश–परम्परा विज्ञान (Genetic Science) 'जीन' तक ही पंहुच पाया है और यह 'जीन' स्थूल शरीर का ही घटक है, किन्तु कर्म सूक्ष्म शरीर का घटक है। इस स्थूल शरीर के भीतर तैजस शरीर है, विद्युत शरीर है। वह सूक्ष्म शरीर है। कर्म शरीर–सूक्ष्मतम है। इसके एक–एक स्कन्ध पर अनन्त–अनन्त लिपियॉ लिखी हुई हैं। हमारे पुरूषार्थ का, अच्छाइयों का, बुराइयों का, न्यूनताओं और विशेषताओं का सारा लेखा जोखा और सारी प्रतिक्रियाएं कर्म शरीर में अंकित रहती हैं। वहां से जैसे स्पंदन आते हैं, आदमी वैसा ही व्यवहार करने लग जाता है।[2]

प्राण से तात्पर्य जीवन शक्ति है। जिसके संयोग से यह जीव जीवन अवस्था को प्राप्त हो और वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त हो उसको प्राण कहते है। पांचो ही इन्द्रियों की जो ज्ञान करने की शक्ति है उसे कहते है– पांच इन्द्रिय प्राण। मनन करने, बोलने और शारीरिक क्रिया करने की शक्ति को कहते है–मनोबल, वचनबल और कायबल। बल और प्राण एक ही

हैं। पुद्गलों को श्वासोच्छ्वास के रुप में ग्रहण करने और छोड़ने की शक्ति–श्वासोच्छ्वास प्राण कहलाती है। इस प्रकार अमुक भव में अमुक काल तक जीवित रहने की शक्ति को कहते है– आयुष्य प्राण।

प्राण का संबंध पर्याप्ति के साथ है/प्राण जीव की शक्ति है और पर्याप्ति जीव द्वारा ग्रहण किए हुए पुद्गलों की शक्ति है। पर्याप्ति कारण है और प्राण कार्य है। जीव की मन, वचन और काया से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी ऐसी प्रवृति नहीं, जो पुद्गल द्रव्य की सहायता के बिना होती है। पांच इन्द्रिय प्राणों का कारण है– इन्द्रिय पर्याप्ति। मनोबल, वचनबल और कायबल का क्रमशः कारण है मनः पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और शरीर पर्याप्ति। श्वासोच्छ्वास प्राण का कारण है–श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति। आयुष्यप्राण का कारण है आहार पर्याप्ति। क्योकि आहार पर्याप्ति के आधार पर ही आयुष्यप्राण टिक सकता है। जैन कर्म–सिद्धान्त के अनुसार इन दस प्राणों में मुख्य प्राण है–आयुष्यप्राण। शरीर की समस्त क्रियाएं और समस्त अंगों का कार्य संचालन तभी तक संभव है जब तक आयुष्यप्राण क्रियाशील है। इसके समाप्त होते ही समस्त क्रियाएं सम्पूर्ण रुप से बन्द हो जाती है जिसे हम मृत्यु की संज्ञा देते हैं।[3]

जब आत्मा एक शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करती है, तब नये जन्म के प्रारंभ में वह जैन कर्म–सिद्धांत के अनुसार पर्याप्ति नाम–कर्म की सहायता से भावी जीवन यात्रा के निर्वाह के लिए एक साथ आवश्यक पौद्गलिक सामग्री का निर्माण करती है। इसे या इससे उत्पन्न होने वाली पौद्गलिक शक्ति को पर्याप्ति कहते है। पर्याप्तियों का क्रम इस प्रकार है– आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मनः पर्याप्ति। कुल छः पर्याप्तियों है। छहों ही पर्याप्तियों का आरम्भ एक काल में होता है, परन्तु उनकी पूर्णता क्रमशः होती है, इसलिए इस क्रम का नियम रखा गया है। आहार पर्याप्ति को पूर्ण होने में एक समय और शरीर पर्याप्ति आदि पांचों में से प्रत्येक को अन्तर्मुहूर्त लगता है। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा, मनः पर्याप्तियों के माध्यम से जीव आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा एवं मन के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करते हैं। उन्हें तदनुरूप परिणत करते हैं और असार पुद्गलों को छोड़ देते हैं।[4]

वंश–परम्परा विज्ञान (Genetic Science) के अन्तर्गत ''जीन्स'' को जैन कर्म–सिद्धान्त के अन्तर्गत शरीर पर्याप्ति के रुप में माना जा सकता है। पर्याप्ति का अर्थ जीवनोपयोगी पुद्गलों की शक्ति के निर्माण की पूर्णता। सबसे कम विकसित प्राणी में कम से कम स्पर्शइन्द्रिय प्राण, कायबल, श्वासोच्छ्वासप्राण, आयुष्यप्राण कुल चार प्राण तथा आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास कुल चार पर्याप्ति अवश्य होती है। इस प्रकार जैन कर्म–सिद्धान्त के अनुसार प्राणों तथा पर्याप्तियां के योग से प्राणी का जीवन क्रम चलता है। कोशिकाओं में जो वृद्वि विभाजन विशिष्टता (**Specialisation)** भिन्नता **(Differentiation)** आदि क्रिया होती है वह सब इन पर्याप्तियों का ही हिस्सा है। इन पर्याप्तियों का नियंत्रण कर्मों द्वारा होता है। कोशिकाओं की मृत्यु होती है तथा अनेक कोशिकाओं द्वारा निर्मित बहुकोशिय प्राणी की भी मृत्यु हो जाती है। यह मृत्यु आयुष्य कर्म के हिसाब से होती है। जितना जिसका आयुष्य होगा, उतने वर्ष तक जीवित रहेगें।

व्यक्ति के व्यवहार, आचार, विचार और प्रत्येक क्रिया कलाप का अंकन व्यक्ति के भीतर निरंतर होता रहता है। ऐसा आज विज्ञान की अनेक शाखाऐं भी मानने लगी है। आज वही अंकन कालांतर से उस व्यक्ति को प्रभावित करता है। भारतीय दर्शनों ने इस अंकन प्रणाली

को कर्म–सिद्धान्त के रुप में विस्तृत विवेचना की है। आधुनिक विज्ञान उस अंकन की विभिन्न पद्धतियों और संस्थानों की चर्चा को आधार बनाती है। हमारा मस्तिष्क भी हमारे क्रिया–कलापों को रिकार्ड करता है। हमारी प्रतिरोधात्मक कोशिकाऐं भी उनका अंकन करती है और अंततः उन सभी अंकनों का आधार बनता है संस्कार सूत्र ''जीन्स''। इन दोनों के स्वतंत्र अध्ययन से जहां दोनों को समझने में सुविधा होगी वही आधुनिक परिपेक्ष में समस्याओं को सुलझाने में मार्गदर्शन मिलेगा।

कर्म सिद्धान्त अति सूक्ष्म है। बुद्धि से परे का सिद्धान्त है। वंश–परम्परा विज्ञान ने कर्म सिद्धान्त को समझने में सुविधा प्रदान की है। जीन व्यक्ति के आनुवांशिक गुणों के संवाहक है। प्रत्येक विशिष्ट गुण के लिए विशिष्ट प्रकार का जीन होता है। ये आनुवांशिकता के नियम कर्मवाद के संवादी नियम है। यह स्थूल शरीर सूक्ष्म कोशिकाओं (Biological Cells) से निर्मित है। मानव शरीर में लगभग साठ–सतर खरब कोशिकाऐं हैं। इन कोशिकाओं में गुणसूत्र होते है, जिन्हें क्रोमोसोम (Chromosomes) कहते है। प्रत्येक गुणसूत्र दस हजार जीन से बनता है। जीन सारे संस्कारसूत्र है। मानव शरीर की प्रत्येक कोशिका में छीयालीस क्रोमोसोम होते है। इन्हे वंश सूत्र की संज्ञा भी दी गई है। जीव विज्ञान के अनुसार प्रत्येक कोशिका या बीजकोष (Germ Plasm) में 23 पिता के तथा 23 माता के वंश सूत्रों (Chromosomes) का समागम होता है। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इनके संयोग से 16, 777, 216 प्रकार की विभिन्न संभावनाऐं अपेक्षित हो सकती है।[5] यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो वातावरण, परिस्थिति, पर्यावरण, भौगोलिकता, आनुवांशिकता, जीन और शरीर की ग्रन्थियों के विभिन्न स्रावों द्वारा रासायनिक परिवर्तन ये सभी कर्म सिद्धान्त के संवादी सूत्र हैं।

जीन हमारे स्थूल शरीर का अवयव है और कर्म हमारे सूक्ष्मतम शरीर का अवयव है। दोनों शरीर से जुड़े हुए है, एक स्थूल शरीर से और दूसरा सूक्ष्मतम शरीर से। यह सूक्ष्मतम शरीर कर्म शरीर है। मृत्यु का संबंध केवल स्थूल शरीर से है। सूक्ष्म शरीर मरणोपरान्त भी विद्यमान रहता है। जैन दर्शन में जिसे सूक्ष्म शरीर (तैजस, कार्मण) कहा गया है सांख्य दर्शन में उसे लिंग शरीर कहा जाता है। संसारावस्था में ये निरंतर साथ रहते हैं। इस चर्चा को वैज्ञानिक संदर्भ में इस प्रकार कहा जा सकता है। वैज्ञानिक पदार्थ की चार अवस्थाएं मानते हैं : ठोस, द्रव्य, गैस व प्लाज्मा। एक अवस्था और खोजी गई जिसे प्रोटोप्लाज्मा या जैवप्लाज्मा कहा जाता है। अध्यात्म–योग की भाषा में प्रोटोप्लाज्मा हमारी प्राण शक्ति है, जो हमारे अस्तित्व का सटीक प्रमाण है। वैज्ञानिकों का यह कहना है कि प्रोटोप्लाज्मा अमर तत्व है। मृत्यु के पश्चात् भी यह रसायन, जो हमारी कोशिकाओं में रहता है, शरीर से अलग होकर वायुमंडल में बिखर जाता है। वही प्रोटोप्लाज्मा निषेचन की क्रिया के समय 'जीन्स' में शिशु के साथ पुनः चला जाता है।[6]

वंश परम्परा विज्ञान की भाषा में पृथ्वी में भी कुछ अति सूक्ष्म जीव होते हैं जिन्हें विषाणु (Virus) कहते हैं। इनमें कोशिका नहीं होती है। ये विषाणु जैसे ही किसी जीवित (Living media) माध्यम के सम्पर्क में आते हैं तो इनकी असंख्यात गुना (Infinite) वृद्धि होती है। जिनका शरीर एक कोशिका से बनता है उसे बैक्टीरिया कहते हैं। उसमें एक केन्द्रक होता है। केन्द्रक में DNA होता है। उसमें वंश–वृद्धि के गुण होते हैं। इसी कारण यह एक कोशीय जीव चयापचय की क्रिया करता है। वंश–वृद्धि का घटक तत्त्व DNA है, जो एक कोशीय जीव में भी पाया जाता है।[7]

क्लोनिंग अर्थात् प्राणी प्रतिलिपिकरण

किसी जीव विशेष का जैनेटिकल प्रतिरुप पैदा करना अर्थात् डोनर पेरेन्ट (नर या मादा कोई एक) की हू–ब–हू शक्ल सूरत (प्रतिलिपि) पैदा कर देना क्लोनिंग कहलाता है। इसे जैन कर्म–सिद्धान्त के अनुसार शरीर–नाम–पर्याप्ति कर्म के विपाक का फलित माना जा सकता है। किसी भी जीव के गुणों का निर्धारण उसकी घटक कोशिकाओं के अन्दर स्थित गुणसूत्रों के द्वारा होता है। विभिन्न विकसित प्राणी लैंगिक प्रजनन की विधि द्वारा अपनी सन्तानों को उत्पन्न करते है, जिसमें नर एवं मादा की जनन कोशिकाओं के आधे आधे गुणसूत्र (वंशसूत्र) मिलकर एक नई रचना करते हैं जिनमें जनक माता पिता के गुण मिले रहते हैं। क्लोनिंग में मात्र नर अथवा मादा की सामान्य दैहिक कोशिकाओं के गुणसूत्रों के द्वारा सन्तान उत्पन्न की जाती है जो कि स्वाभाविक रुप से उनके दाता व्यक्ति (जनक) जैसी ही होती है। अविकसित जीवों, पेड़ पौधों आदि में तो यह क्रिया कायिक प्रजनन, अलैगिक प्रजनन आदि के रुप में प्राकृतिक रुप में पाई जाती है। परन्तु आधुनिक विज्ञानिकों ने विकसित जीवों चूहों, भेड़ों एवं मनुष्यों तक को इस विधि से उत्पन्न करना शुरु कर दिया है।

स्तनधारी पशुओं में क्लोन बनाने की तकनीक

प्रत्येक पशु तथा वनस्पति में अनेक कोशिकाऐं (Cells) पाई जाती हैं। मनुष्य के शरीर में इन कोशिकाओं की कुल संख्या लगभग 60–70 खरब है। प्रत्येक कोशिका (cell) अपने आप में पूर्ण जीवित इकाई होती है। कोशिका के केन्द्र में एक नाभिक (Nucleus) होता है जिसे केन्द्रक भी कहते हैं। केन्द्रक के अन्दर उस जीव के गुणसूत्र (वंशसूत्र) होते हैं। मनुष्य की कोशिका में गुणसूत्रों (Chromosomes) की संख्या 46 होती हैं। इन गुणसूत्रों में ही आनुवांशिकी (Heredity) के सभी गुण मौजूद होते हैं। गुणसूत्रों की रचना डी.एन.ए. (D.N.A.) तथा आर.एन.ए. (R.N.A.) नामक रसायनों से निर्मित होती है। इन गुणसूत्रों पर जीन स्थित होते हैं। कोशिका के केन्द्रक के चारों और एक जीव–द्रव होता है जिसे प्रोटोप्लाजमा कहते हैं।

नर के शुक्राणु (Sperm Cell) तथा मादा के अण्डाणु (Egg Cell) भी परिपक्व कोशिकाएं होती हैं। इनमें द्विगुणन द्वारा वृद्वि नहीं होती। स्तनधारी पशुओं में लैंगिक (Sexual) प्रजनन होता है। इस प्रक्रिया में शुक्राणु, अण्डाणु के साथ मिलकर (Fusion) एक नई कोशिका का निर्माण होता है। इस नई कोशिका में द्विगुणन (Copying) करने की क्षमता होती है जिससे वह भ्रूण में परिवर्तित हो जाता है। इस कोशिका के केन्द्रक में गुणसूत्रों की संख्या तो 46 होती हैं, लेकिन इनमें से आधे गुणसूत्र नर के तथा शेष आधे मादा के होते हैं। इसके विपरीत क्लोनिंग द्वारा उत्पन्न नई कोशिका में सारे के सारे गुण सूत्र किसी एक ही के होते हैं।

स्तनधारी पशुओं में क्लोन पैदा करने की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार से है– इसके लिए सर्वप्रथम मादा के एक स्वस्थ अण्डाणु (Egg Cell) को काम में लिया जाता है। इस अण्डाणु (Egg cell) में से विशेष तकनीक द्वारा केन्द्रक (Nucleus) को अलग कर दिया जाता है तथा उस केन्द्रक–विहीन कोशिका (Protoplasma) को एक सुरक्षित स्थान पर कल्चर मीडियम में डुबोकर रख दिया जाता है। अब हमें जिस प्रकार के जीव का क्लोन तैयार करना है (उस प्रकार के डोनर पेरेन्ट) त्वचा में से कोशिका (Cell) अलग कर दी जाती है। इस कोशिका के केन्द्रक (Nucleus) को बड़ी सावधानीपूर्वक अलग कर दिया जाता है। इस केन्द्रक को पूर्व में सुरक्षित की गई केन्द्रक–विहीन कोशिका (Protoplasma) में प्रतिस्थापित (Transplant) कर दिया जाता है। इस प्रकार एक नई कोशिका पैदा हो जाती है जिसका केन्द्रक डोनर पेरेन्ट

की कोशिका का केन्द्रक होता है। इस प्रकार नई कोशिका में गुणसूत्र वे ही होते हैं जो कि डोनर पेरेन्ट (Doner Parent) के होते हैं। यही नई कोशिका द्विगुणन (Copying) द्वारा भ्रूण में परिवर्तित हो जाती है। इस भ्रूण को किसी भी मादा के गर्भाशय में स्थित कर दिया जाता है जहां वह सामान्य रूप से विकसित होने लगता है। इस प्रकार जो नवजात पैदा होता है उसमें गुणसूत्र वे ही होते है जो कि डोनर पेरेन्ट के होते हैं, अतः उसकी शक्ल सूरत हू–ब–हू डोनर पेरेन्ट (Doner Parent) जैसी ही होती है यानि कि वह डोनर पेरेन्ट (Doner Parent) की कार्बन कॉपी ही होती है। इस प्रकार हम जिसका प्रतिरूप (कॉपी–क्लोन) तैयार करना चाहते हैं उसका केन्द्रक मादा के केन्द्रक–विहीन (Protoplasma) अण्डाणु में प्रतिस्थापित करना होगा। यदि हम नर का क्लोन तैयार करना चाहते हैं तो उसकी कोशिका (Cell) का केन्द्रक और यदि मादा का क्लोन तैयार करना चाहते हैं तो मादा की कोशिका का केन्द्रक मादा के केन्द्रक–विहीन अण्डाणु में प्रतिस्थापित करना होगा।[8]

जैन कर्म–सिद्धान्त तथा मानव क्लोनिंग

जैन धर्मानुसार जीवन की विभिन्न क्रियाओं, रचनाओं तथा घटनाओं का नियंत्रण कर्मों के द्वारा होता है। विभिन्न जीवो को मिलने वाले अलग अलग शरीर, आयु, गोत्र, सुख–दुःख आदि का निर्धारण विभिन्न कर्म करते हैं। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं की जीवन का पूर्ण संचालन कर्मों के द्वारा ही होता है। **वस्तुतः कर्म तो मात्र परिस्थितियों का निर्माण करते हैं किन्तु उन कर्मों के अनुसार आचरण करना या नहीं करना इसमें जीव स्वतन्त्र है। आत्मा कर्मों के कारागार में बंधी अवश्य है परन्तु वह अपने पुरुषार्थ के द्वारा कर्मों के फल में परिवर्तन कर सकती है। चेतना की स्वतन्त्र शक्ति के द्वारा कर्मों पर विजय पाना ही जिनधर्म है।**

अब यहां सवाल यह है कि जब वैज्ञानिक ही मानव तथा अन्य जीवों के लिए विभिन्न गुणों का निर्धारण करने लगे हैं तो जैन कर्म–सिद्धांत कहां लागू होता है? शरीर में किसी प्रकार का परिवर्तन करना क्या कर्म–सिद्धान्त को चुनौती नहीं है? इस विषय में यह कहना उचित होगा कि एक अपराधी किसी व्यक्ति का अंग–भंग कर देता है या कोई व्यक्ति शल्यक्रिया के द्वारा अंग परिवर्तित करवा लेता हैं अथवा कोई मानसिक उपचार के द्वारा अपराधी प्रवृति से छुटकारा पा लेता है या फिर जहर/दुर्घटना से असमय में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, तो यह सब कर्म–सिद्धान्त के लिए चुनौती नहीं माने जा सकते। यही कार्य अब और भी व्यवस्थित रूप से परन्तु अप्राकृतिक, अनैतिक रूप से क्लोनिंग प्रक्रिया के द्वारा वैज्ञानिक कर रहे हैं। एक समान मनचाहे जीवों को पैदा करने की बात भी बिल्कुल अधूरी है। एक जैसी शक्ल सूरत शरीर बन जाने का यह अर्थ नहीं होता कि उसका व्यक्तित्व और व्यवहार भी एक जैसा हो अर्थात् यह जरूरी नहीं की अपराधी का क्लोन अपराधी तथा वैज्ञानिक का क्लोन वैज्ञानिक ही बने। लोगों को लगता हैं कि क्लोनिंग के द्वारा किसी भी जीव को वैज्ञानिक सुनिश्चित रीति से बना सकते है परन्तु ऐसा नहीं है। पहली क्लोन भेड़ का निर्माण इस सम्बंध में किए गए 277 परीक्षणों की असफलता के बाद हुआ था तथा मानव क्लोनिंग के 100 में से 1 या 2 मामलों में ही सफलता मिली है।[9]

जो जीव कई बार की असफलताओं के बाद बनते भी हैं तो वह दरअसल वैज्ञानिकों के द्वारा नहीं बनते हैं। वैज्ञानिक तो मात्र एक निश्चित शरीर रचना के अनुकूल परिस्थितियां देते हैं। उसमें जीव/आत्मा का आविर्भाव उनके बस के बाहर की है। क्लोनिंग सिर्फ शरीर के स्तर तक जुड़ी हुई हैं जबकि आत्मा तथा पुनर्जन्म का सिद्धान्त वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक प्रयोगशालों की सीमाओं से परे है। आत्मा तथा पुनर्जन्म का आभास सत्यान्वेषी अहिंसक मानवों को होता

है। इसे अभी वैज्ञानिक भी पूरे आत्मविश्वास तथा प्रमाणों के साथ नकार नहीं सके हैं। कारण स्पष्ट है कि इनके अस्तित्व के सम्बंध में संसार भर में असंख्य प्रमाण/घटनाएं हर समय होती ही रहती है।[10]

जैन धर्म तथा प्रौद्योगिकी

जीव विज्ञान की आधुनिक विकसित शाखा जैव प्रौद्योगिकी में मानव जीनोम परियोजना, जैनेटिक अभियांत्रिकी, जैनेटिक सर्जरी तथा मानव क्लोनिंग आदि का अध्ययन, अन्वेषण किया जाता है। इसके नूतन अनुसंधानों के द्वारा जीवों के गुणसूत्रों पर स्थित जीन्स (संस्कारसूत्र) के कई गुण धर्मों का पता चल रहा है। जीवों की विभिन्न दशाओं–बुढापा, अपराध, बिमारियां आदि का नियमन भी इन संस्कार सूत्रों से होता है तथा इनके परिवर्तन के द्वारा मनोवांछित जीवन बनाने का दावा वैज्ञानिक कर रहे हैं। जीनों तथा जैनेटिक कोड के इस गुणधर्म को ध्यान में रखते हुए जैनेटिक कोडों और कर्म परमाणुओं के बीच सम्बंधों पर परिकल्पना वैज्ञानिकों को दी गई है जिस पर कुछ वैज्ञानिक व्यापक अनुसंधान भी कर रहे है।

पहले तो हमें यह समझ लेना चाहिए की जीन तथा जैनेटिक कोड सर्वोपरि नही हैं तथा उन पर शारीरिक, पर्यावरणीय, वातावरण, आंतरिक तथा बाह्य परिस्थतियां भी नियंत्रण रखती है। जीवन के क्रियाकलाप उसके स्वयं के शरीर के साथ–साथ दूसरें जीवों के क्रियाकलापों तथा अन्य बाह्य परिस्थितियों द्वारा संचालित होते हैं। इन जीनों तथा इनकों प्रभावित करने वाले उक्त कारण ही अन्ततः कर्म–परमाणुओं की संभावनाओं को सूचित करते हैं जिनके संबंध में वैज्ञानिक वर्ग फिलहाल पूर्णतः मौन हैं। अगर वैज्ञानिक जैन कर्म–सिद्धांत को समझकर जीवों के विभिन्न कार्य–सच्चाई–झूठ, अहिंसा–अपराध, जीवदया–क्रूरता पर सतत् अन्वेषण करें तो वे इस महान् जैन कर्म–सिद्धान्त को सत्य सिद्ध पाएंगे।[1] [11]

जैन कर्म–सिद्धांत के अनुसार जीव के शरीर की रचना उसके नाम–कर्म के कारण होती हैं। कोई जीव कैसी शक्ल–सूरत प्राप्त करेगा उसका निर्धारण इसी नामकर्म से होता है। लेकिन यहां तो क्लोन से शरीर की रचना मनुष्य के अपने ही हाथों में आ गई है। हम जैसी शक्ल–सूरत बनाना चाहते हैं बना सकते है। ऐसी स्थिति में नामकर्म की अवधारणा अर्थहीन हो गई है। लेकिन ऐसा सोचना सही नहीं है। वस्तुस्थिति समझने के लिए हमें जैन कर्म–सिद्धान्त को गहराई से समझना होगा।

सबसे पहले तो हमें स्पष्ट करना होगा की प्रत्येक घटना मात्र कर्म से घटित नहीं होती। आचार्य महाप्रज्ञजी ने अपनी पुस्तक कर्मवाद में लिखा है–''कर्म से ही सब कुछ नहीं होता। यदि हम कर्मों के अधीन ही सब कुछ घटित होना मान लेंगे तो यह वैसी ही व्यवस्था हो जाएगी जैसी कि ईश्वरवादियों की हैं कि जो कुछ होता है वह ईश्वर की इच्छा से होता है या फिर उन नियतिवादियों की स्थिति है कि सब कुछ नियति के अधीन है, हम उसमें कुछ भी फेर–बदल नहीं कर सकते। यदि कर्म ही सब कुछ हो जाए तो उनको क्षय करने के लिए न तो पुरूषार्थ का ही महत्व रह जाएगा और न ही मोक्ष संभव होगा क्योंकि जैसे कर्म होंगे वैसा ही उनका उदय होगा और उस उदय के अनुरूप ही हम कार्य करेंगे तथा नए कर्मों का बंधन करेंगे। इससे पुरूषार्थ तथा मोक्ष की बात गलत सिद्ध हो जाएगी।'' अब यह स्पष्ट है कि कर्म ही सब कुछ नहीं है।[12]

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी आगे स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– ''कर्म एक निरंकुश सत्ता नहीं है। कर्म पर भी अंकुश है। कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। भगवान महावीर ने

कहा–'किया हुआ कर्म भुगतना पड़ेगा'। यह सामान्य नियम है, लेकिन इसमें कुछ अपवाद हैं। कर्मों में उदीरणा, उद्वर्तन, अपवर्तन तथा संक्रमण संभव हैं जिसके द्वारा कर्मों में परिवर्तन भी किया जा सकता है। सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि पुरुषार्थ द्वारा कर्मों की निर्जरा समय से पहले की जा सकती है। कर्मों की काल–मर्यादा और तीव्रता को बढ़ाया और घटाया भी जा सकता है तथा सजातीय कर्म एक भेद से दूसरे भेद में बदल सकते है। उदय में आने वाले कर्मों के फल की शक्ति को कुछ समय के लिए दबाया जा सकता है तथा काल विशेष के लिए पुनः फल देने में अक्षम भी किया जा सकता है, इसे उपशम कहते है।''[13]

आचार्य महाप्रज्ञजी का मानना है–''संक्रमण का सिद्धान्त जीन को बदलने का सिद्धान्त है।''[14]एक विशेष बात यह भी ध्यान देने योग्य है कि कर्मो का विपाक (फल) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुरूप होता है। व्यक्तित्व के निर्माण में कर्म ही सब कुछ नहीं होते है बल्कि आनुवांशिकता, परिस्थिति, वातावरण, भौगोलिकता, पर्यावरण यह सब मनुष्य के स्वभाव और व्यवहार पर असर डालते है। आयुष्य भी एक कर्म हैं लेकिन बाह्य निमित्त जहर आदि के सेवन से आयुष्य को कम कर दिया जाता है। इसी प्रकार कोशिका (Cell) के गुणसूत्रों (Chromosome) में अवस्थिति जीन्स (संस्कारसूत्र) में परिवर्तन करके शक्ल–सूरत में परिवर्तन किया जा सकता है क्योंकि जैन कर्म–सिद्धान्त के अनुसार संक्रमण द्वारा यह संभव है। अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते है कि जैन कर्म–सिद्धान्त के अनुसार मानव जीनोम परियोजना, जैनेटिक अभियांत्रिकी, जैनेटिक सर्जरी, मानव क्लोनिंग द्वारा एक ही शक्ल–सूरत वाले जीव पैदा करना, कोशिका के केन्द्रक को परिवर्तित कर देना संभव है। अतः वंश–परम्परा विज्ञान (Genetic Science) कर्म सिद्धान्त के लिए कोई चुनोती नहीं हैं बल्कि जैन कर्म–सिद्धांत को व्यवस्थित तरीके से समझ लेने पर वंश–परम्परा विज्ञान (Genetic Science) की व्याख्या जैन कर्म–सिद्धांत के आधार पर आसानी से की जा सकती है।

जैन कर्म–सिद्वान्त और वंश–परम्परा विज्ञान (Jain theory of karma and Genetic science) दोनों का गहन अध्ययन व शोध कर जन–मानस तक यह तथ्य उजागर करना है कि हर प्राणी पुरुषार्थ कर संक्रमण के द्वारा अशुभ कर्मों को शुभ में बदल सकता है तथा त्याग, संयम, संवर और निर्जरा के द्वारा स्थूल शरीर के 'जीन्स' के स्वरुप को भी बदला जा सकता है। वंश–परम्परा विज्ञान (Genetic science) की शोध कर यह उद्घाटित करना है कि किसी भी प्राणी के जख्मी 'जीन्स' के स्थान पर स्वस्थ 'जीन्स' का प्रत्यारोपण कर स्थूल शरीर को उन्नत किया जा सकता है।

सामाजिक उपयोगिता

इस शोध कार्य से संसारी आत्मा की शुभ–अशुभ प्रवृत्ति से चिपकने वाले शुभ–अशुभ कर्मो की जानकारी मानव–जगत को मिलेगी जिससे व्यक्ति अनैतिकता एवं हिंसा करने में संकोच करेगा। प्राणी मात्र के स्थूल शरीर रचना में 'जीन्स' किस प्रकार अपना योगदान देते है, जैसा 'जीन्स' वैसा स्थूल शरीर का महत्व जन–मानस को प्रकट होगा, जिससे वे अपने 'जीन्स' के शुद्धिकरण के बारे में सचेत होंगें। **हमारी आत्मा चिन्तन व पुरुषार्थ में स्वतंत्र है, परन्तु कर्मों की बद्धता के कारण परतंत्र है। आत्मा के पुरुषार्थ से त्याग, संयम, संवर, निर्जरा करके प्राणी अपनी आत्मा की शुद्धि करके स्थायी सुखानुभूति प्राप्त कर सकता है। 'भाव परिवर्तन' द्वारा कर्मों की निर्जरा तथा 'जीन्स' का रूपान्तरण किया जा सकता है।** इस शोध से जब सूक्ष्म एवं स्थूल शरीर के शुद्धिकरण का सूत्र जन–मानस के हाथ लगेगा तो वह भावों की

शुद्धि करके एक अच्छे समाज, राष्ट्र तथा विश्व का निर्माण कर सकेगा। इस शोध प्रबन्ध में इतनी सामाजिक अर्हता है कि वह वर्तमान भावात्मक युगीन समस्याएं परिग्रह, आतंकवाद, हिंसा, जनसंख्या–वृद्धि, लूट–खसोट, कुदाग्रह, गरीबी, बीमारी का स्थायी समाधान दे सकता है। इस शोध कार्य से उद्‌घाटित होगा कि वंश–परम्परा विज्ञान (Genetic Science) की शाखा क्लोनिंग तकनीक के द्वारा मानव के विभिन्न अंगों को प्रयोगशाला में ही विकसित किया जा सकता है जिससे कई असाध्य रोगों को दूर करने में आसानी होगी। इसके अलावा इस तकनीक से विभिन्न बेकार जीन्स को बदला जा सकेगा तथा बुढापे को रोका जा सकेगा। इसी चिकित्सकीय उपयोगिता को देखते हुए ब्रिटिश सरकार ने जनवरी 2001 में मानव क्लोनिंग की इजाजत दे दी है।[15]

जैन कर्म–सिद्धान्त के अनुसार कर्मबद्ध आत्मा ही नये कर्मों का संचय करती है। कर्म का बीज है–राग–द्वेष। मुक्त आत्मा कर्म संचय नहीं करती क्योंकि उसके राग–द्वेष पूर्ण नष्ट हो चुके होते हैं। कर्म क्षय करने में जैन धर्म का पुरूषार्थ एवं प्रयत्न में अटूट विश्वास है। जैन साधना पद्धति का उद्देश्य संवर, निर्जरा के द्वारा कर्मों का क्षय कर मोक्ष की प्राप्ति करना है। संक्रमणकरण, उद्‌वर्तना, अपवर्तना तथा उदीरणा आदि के द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों की स्थिति को, अनुभाग को घटाया बढ़ाया जा सकता है। इसके लिए समता–भाव की साधना, आराधना करते हुए तप रूप निर्जरा को जीवन का अंग बनाना आवश्यक है।

जीन हमारे स्थूल शरीर का अवयव है और कर्म हमारे सूक्ष्मतम शरीर का अवयव है। **''जीन्स'' व्यक्ति के आनुवांशिक गुणों के संवाहक है।** प्रत्येक विशिष्ट प्रकार के गुण के लिए विशिष्ट प्रकार का जीन होता है। यह जीन कर्मवाद के संवादी हैं। वंश–परम्परा विज्ञान में क्लोनिंग तकनीक के द्वारा मानव के विभिन्न अंगों को प्रयोगशाला में ही विकसित किया जा सकता है, जिससे कई असाध्य रोगों को दूर करने में आसानी होगी। इसके अलावा इस तकनीक से विभिन्न बेकार 'जीन्स' को बदला जा सकेगा तथा बुढापे को रोका जा सकेगा। संक्रमण का सिद्धान्त जीन को बदलने का सिद्धान्त है। **''भाव परिवर्तन'' द्वारा कर्मों की निर्जरा तथा जीन्स का रूपान्तरण किया जा सकता है।**

निष्कर्ष

वैज्ञानिकों के सामने एक चुनौती है कि जब जीन ही शरीर के प्रत्येक कार्य पर नियंत्रण रखता है तब जीन को कौन नियंत्रित करता है? इसका उत्तर उनके पास नहीं है। इस समस्या का उत्तर जैन दर्शन की कर्म–व्यवस्था द्वारा दिया जा सकता है। इन जीनों (Genes) को कर्म नियंत्रित करते हैं। कर्म ही समय–समय पर जीनों को निर्देश देते हैं कि उन्हे आगे क्या कार्य करना है फिर जीन उसी के अनुरूप कार्य करते हैं यानि कि औदारिक शरीर के निर्माण मे जीन कर्म के संवादी तत्त्व हैं।

सलाहकार,
जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय
लाडनूं

संदर्भ ग्रन्थ

1. तत्त्वार्थ सूत्र – आचार्य उमास्वाति
2. कर्मवाद – युवाचार्य (वर्तमान आचार्य) महाप्रज्ञ, पृ.137
3. जीव–अजीव – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 22
4. वही, पृ. 18
5. मनोविज्ञान और शिक्षा, पृ. 161
6. आचारांग प्रथम अध्ययन : एक अनुशीलन, पृ. 10
7. वही, पृ. 14
8. जीवन क्या है : डॉ.अनिल कुमार जैन, पृ. 95
9. वर्मा, संजय, विज्ञान प्रगति(नई दिल्ली) मार्च, 2003, पृ. 19
10. अर्हत वचन – अजित जैन'जलज' जनवरी–मार्च, 2004, पृ. 49
11. अजित जैन'जलज' कर्म सिद्धान्त की जीव विज्ञानिक परिकल्पना, अर्हत वचन(इन्दौर) जुलाई, 1999, पृ. 17–22
12. कर्मवाद – युवाचार्य (वर्तमान आचार्य) महाप्रज्ञ, पृ. 132
13. वही, पृ. 102
14. वही, पृ. 132
15. वर्मा, संजय, मानव क्लोनिंग, विज्ञान प्रगति, (नई दिल्ली) 2003 पृ. 20